International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 234-241

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 234-241
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-12-2022
Accepted: 23-01-2023

शैलेश कुमार कुशवाहा
पीएच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
शैलेश कुमार कुशवाहा
पीएच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

राजेन्द्रकर्णपूर में अलङ्कार तत्त्व

शैलेश कुमार कुशवाहा

सारांश
आचार्य भामह के पूर्वकालीन विद्वानों द्वारा भी अलङ्कार विषय पर विवेचन किया जाना सिद्ध होता है किन्तु भामह के पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर भामह ही अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रधान प्रतिनिधि के रूप में माने जा सकते हैं। भामह का मानना है कि काव्य का सबसे प्रमुख सौन्दर्याधायक तत्त्व अलङ्कार है। जिस प्रकार कामिनी का मुख सुन्दर होते हुए भी विना भूषण के शोभायमान नहीं होता,[1] उसी प्रकार अलङ्कारों के विना काव्य की शोभा नहीं होती। शब्द और अर्थ की वक्रता से युक्त उक्ति को भामह ने अलङ्कार बताया है।[2] इन्होंने अतिशयोक्ति अलङ्कार के प्रकरण में 'वक्रोक्ति' का प्रयोग अतिशयोक्ति के लिए किया है।[3] अतिशयोक्ति का पर्याय ही वक्रोक्ति है।
आचार्य दण्डी ने भी कहा है कि सब अलङ्कारों में सामान्यतः अतिशयोक्ति होती ही है। इस प्रकार अतिशयोक्ति सब अलङ्कारों का बीज रूप है।[4] निष्कर्ष यह है कि उक्ति वैचित्र्य को ही काव्य में अलङ्कार कहते हैं। उक्ति वैचित्र्य भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है, उस विभिन्नता के आधार पर ही अलङ्कारों के विभिन्न नाम निर्दिष्ट किए गए हैं। इस शोध प्रपत्र में अलङ्कार-सिद्धान्त की दृष्टि से राजेन्द्रकर्णपूर का विवेचन किया जाएगा।

कूटशब्द : राजेन्द्रकर्णपूर, अलङ्कार, शम्भु, हर्षदेव

प्रस्तावना
अलङ्कार शब्द 'अलम्' पूर्वक 'कृ' धातु के प्रयोग से 'अलङ्क्रियते अनेन' अथवा 'अलङ्करोति' व्युत्पत्ति के आधार पर करण या भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'अलङ्कार' शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है- जिस पदार्थ या तत्त्व द्वारा सौन्दर्य में वृद्धि हो, वह पदार्थ या तत्त्व अलङ्कार कहलाता है। कुण्डल आदि अलङ्कार जिस प्रकार

---

[1] न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् । भा. का. ल. २/१३

[2] वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः । वही १/३६

[3]सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ।। वही २/८५

[4] अलङ्कारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम् ।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम् ।। का. द. २/२२०

भौतिक शरीर को अलङ्कृत करते हैं, उसी प्रकार शब्द-अर्थ रूप शरीर वाले काव्य को उपमा आदि अलङ्कृत करते हैं।[5]

वेदों में अलङ्कारात्मक वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में 'अलम्' पद के लिए 'अरम्', 'अरङ्कृत' तथा 'अरङ्कृति' पदों का प्रयोग अनेक बार हुआ है।[6]

ऋग्वेद के अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों[7], उपनिषदों[8] में सौन्दर्यधायक तत्त्व के रूप में अलङ्कार पद का प्रयोग स्पष्ट शब्दों में किया गया है।

'अरङ्कृत' और 'अलङ्कृत' पदों को यास्क ने पर्यायवाची बतलाते हुए[9] उपमा पद की निरुक्ति भी की है[10] तथा उपमा पद की विस्तृत व्याख्या भी की है।[11]

महत्त्व

अलङ्कारों का महत्त्व काव्य में कितना दिया गया है और किस-किस आचार्य ने काव्य में अलङ्कारों की स्थिति अनिवार्य तथा किसने ऐच्छिक बतलाई है इसके लिए प्रथम यह द्रष्टव्य है कि काव्य में काव्यत्व की स्थिति किस पदार्थ पर निर्भर है। इसमें किसी भी आचार्य का मतभेद हो ही नहीं सकता कि काव्यत्व 'चमत्कार' पर ही निर्भर है। किन्तु उस चमत्कार का आधायक मुख्य पदार्थ क्या है? इसपर आचार्यों का विभिन्न मत है। ध्वन्यालोक के पूर्व ध्वनि पर तो कोई ग्रन्थ लिखा ही नहीं गया था, अतएव ध्वन्यालोक के पूर्व के साहित्य ग्रन्थों में रस, गुण, अलङ्कार ही काव्य में चमत्कार पदार्थ माने जाते थे। अतः रस, गुण, अलङ्कार इन तीनों की ही स्थिति काव्यत्व के लिए आवश्यक है अथवा एक या दो की स्थिति पर्याप्त है।[12]

ध्वन्यालोक के पूर्ववर्ती मत पर विचार करने पर यह विदित होता है कि नाट्यशास्त्र में सर्वोपरि चमत्कार पदार्थ रस है। यद्यपि नाट्यशास्त्र में अलङ्कार तथा गुणों का निरूपण भी किया गया है पर इनको अधिक महत्त्व न देते हुए रस के महत्त्व के विषय में भरतमुनि ने कहा है कि रसयुक्त होना ही काव्यत्व के लिए पर्याप्त है।[13] अग्निपुराण में काव्य का जीवन-सर्वस्व केवल रस को बतलाते हुए भी अलङ्कार और गुण की स्थिति भी काव्य में आवश्यक बतलाई गई है। अर्थात रस को जिस प्रकार काव्य का जीवनाधार बताया गया है उसी प्रकार अलङ्कार रहित काव्य को वैधव्य स्त्री के समान चमत्कारहीन और गुणहीन काव्य को कुरूपा स्त्री के समान चित्ताकर्षक नहीं माना गया है।[14]

आचार्य उद्भट ने रस और भावादि विषय को अलङ्कारों के अन्तर्गत ही माना है। अतएव भामह, दण्डी, और उद्भट के मतानुसार अलङ्कार की स्थिति ही प्रधानतया काव्यत्व के लिए पर्याप्त है फिर वह चाहे रसवत् अलङ्कार युक्त हो अथवा उपमा आदि अन्य अलङ्कार युक्त।

वामन ने यद्यपि काव्य की आत्मा रीति को प्रतिपादित किया है, तथापि काव्य की उपादेयता सौन्दर्यरूप अलङ्कार के कारण ही स्वीकार की, उनके मतानुसार अलङ्कार काव्यात्मक सौन्दर्य ही है। यद्यपि काव्य की शोभा गुणों के द्वारा ही होती है, फिर भी उस शोभा का अतिशय अलङ्कार ही करते हैं।[15]

रुद्रट ने रस को महत्त्व अवश्य दिया है पर रस को काव्य का जीवन नहीं कहा है और अलङ्कारों को अपने ग्रन्थ में प्रथम स्थान देकर तथा विस्तृत विवेचन करके अलङ्कारों का प्राधान्य स्वीकार किया। इसी को प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम 'काव्यालङ्कार' रखा।[16]

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक ने काव्य की परिभाषा करते हुए अलङ्कार सहित उक्ति को ही काव्य माना है।[17] आचार्य मम्मट काव्य में अलङ्कारों को विशेष महत्त्व न देते हुए अलङ्कार रहित[18] (अस्फुट अलङ्कार) को भी हारादिवत् शोभाधायक तत्त्व के रूप में काव्य माना है।[19] काव्यों में अलङ्कारों का प्राधान्य बताते हुए आचार्य जयदेव ने कहा है कि जो अलङ्कार विहीन शब्द-अर्थ को काव्य स्वीकार कर सकता है, वह अग्नि को भी अनुष्ण क्यों नहीं मान लेता?[20]

इन आचार्यों के मतों की निष्कर्ष रूप में रूय्यक ने कहा है- अलङ्कारा एव काव्य प्रधानमिति प्राच्यानां मतः।[21]

---

[5] अ. शा. इति., पृ. २६३, डॉ कृष्ण कुमार

[6] का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः। ऋ. ७/२९/३

[7] अञ्जनाभ्यञ्जने प्रयच्छन्त्येव ह मानुषोऽलङ्कारः। श. ब्रा. १३/८/४/७

[8] वसनेन अलङ्कारणेति संस्कुर्वन्ति। छा. उप. ८/८

[9] सोमा अरङ्कृताः। नि. १०/१२

[10] उपमा अतत् तत्सदृशम्। वही ३/३१४

[11] तदासां कर्म ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वा उपमिमीते अथापि कनीयसा ज्यायांसम्। वही ३/४/११८

[12] सं. सा. इति., पृ. २५९, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

[13] तत्र रसानेव तावदादावभिव्याख्यास्यामः।
न हि रसादृते कश्चित्पदार्थः प्रवर्तते।। ना. शा. ६, पृ. २२८, डॉ सुधा रस्तोगी

[14] अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती। अ. पु. ३४३/१२

[15] काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।। का. ल. सू. वृ. ३२/१/

[16] काव्यालङ्कारोऽयं ग्रन्थः क्रियते यथायुक्ति। रु. का. ल. १२/

[17] अलङ्कृतिरलङ्कार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते।
तदुपायतया तत्त्वं सालङ्कारस्य काव्यता।। व. जी. १६/

[18] हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः। का. प्र. ८६७/

[19] तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। वही, सूत्र १/१

[20] अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।। चन्द्रा८/१.

[21] सं. सा. इति. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, पृ. २५६

अब राजेन्द्रकर्णपूर के श्लोकों की अलङ्कारपरक समीक्षा निम्नलिखित प्रकार से करते हैं।

छेकानुप्रास

अनेक व्यञ्जन वर्णों का एक बार सादृश्य छेकानुप्रास कहलाता है।[22]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में छेकानुप्रास अलङ्कार का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलता है-

त्वय्युत्पन्ने गुणवति सतां नाभिरामः स राम-
स्त्यागव्यग्रे भवति भवति म्लानवर्णः स कर्णः ।
ब्रूमः किं वा बहु ननु धनुर्वेदविद्याविदस्ते
सङ्ग्रामोर्वीपुरहर पुरः स्यादपार्थः स पार्थः ।। 23

प्रस्तुत पद्य में 'नाभिरामः स रामः' में र, म; 'म्लानवर्णः स कर्णः' में ण; 'पुरहर पुरः' में प, र, तथा 'अपार्थः स पार्थः' में प, थ व्यञ्जनों की एक बार सादृश्य होने से छेकानुप्रास अलङ्कार है।

कुन्दैः कन्दलितव्यथं विचकिलः कम्पाकुलं केतकः
सातङ्कं मदनः सदैन्यमलसं मुक्तोऽतिमुक्तद्रुमः ।
मोक्तुं किन्तु न पारितस्तव रिपुस्त्रीभिः पुरीनिर्गमे
तत्कालं कृतमाधवीपरिणयः सत्केसरः केसरः ।। 24

प्रस्तुत पद्य में 'कुन्द कन्द' में क, द; 'किल कुल' में क, ल व्यञ्जनों की एक बार सादृश्य होने से छेकानुप्रास अलङ्कार है।

वृत्त्यनुप्रास

एक या अनेक व्यञ्जनों का अनेक बार सादृश्य होने पर वृत्त्यनुप्रास होता है।[25]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में वृत्त्यनुप्रास का सुन्दर वर्णन मिलता है-

लोलन्मौक्तिकवल्लि वेल्लदलकं वाचालकाञ्चीगुणं
चञ्चत्काञ्चनकङ्कणं च गिरिजा जातोत्सवा नृत्यतु ।
त्वत्कीर्त्तिश्रवणोन्मुखेन विलसत्कल्लोलकोलाहला
यन्मुक्ता मुकुटान्मृगाङ्कशकलोत्तं सेन मन्दाकिनी ।। 26

प्रस्तुत पद्य में क, व, च, ल आदि वर्णों की अनेक बार आवृति होने से वृत्त्यनुप्रास अलङ्कार है।

कर्पूरैरिव पारदैरिव सुधास्यन्दैरिवाप्लाविते
जाते हन्त दिवापि देव ककुभां गर्भे भवत्कीर्तिभिः ।
धृत्वाङ्ग कवच निबध्य शरधिं कृत्व पुरो माधवं
कामः कैरवबान्धवोदयधिया धुन्वन्धनुर्धावति ॥ 27

प्रस्तुत पद्य में क, ध, र और व वर्णों की अनेक बार आवृति होने के कारण वृत्त्यनुप्रास अलङ्कार है।

यमक

अर्थ होने पर भिन्न-भिन्न अर्थ वाले वर्ण-समुदाय का पूर्वक्रम से ही आवृति यमक अलङ्कार कहलाता है।[28]

यो वैरिष्वनलो नलो वसुमतीदीपो दिलीपोऽथ यो
यो मानेन पृथुः पृथुर्जगति यो निर्लाघवो राघवः ।
यः कीर्तौ भरतो रतो नृपगुणैर्यः शंतनुः शंतनुः
संजाते त्वयि कस्य न क्षितिपते सर्वेऽपि ते विस्मृताः ॥ 29

प्रस्तुत पद्य में 'पृथु' तथा 'शन्तनु' इन शब्द की आवृति हुई है, यहाँ प्रथम पृथु का अर्थ राजा एवं दूसरे पृथु का अर्थ महान् से है तथा प्रथम शन्तनु का अर्थ राजा एवं दूसरे शन्तनु का अर्थ कल्याणमय शरीर से है। अतः यमक अलङ्कार है।

श्लेष

अर्थ का भेद होने से भिन्न-भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए श्लिष्ट (परस्पर मिले हुए) प्रतीत होते हैं, तब वह श्लेष रूप शब्दालङ्कार होता है।[30]

---

22 सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः। का. प्र., सूत्र ९/१०५

23 राजेन्द्र. २८

24 वही ७०

25 एकस्याप्यसकृत्परः। का. प्र., सूत्र ९/१०६

26 राजेन्द्र. ३२

27 वही ३३

28 अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः । का. प्र., सूत्र ९/११६

29 राजेन्द्र. ५१

30 वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः ।

स ख्यातो जगति त्रिविक्रम इति त्वद्विक्रमा भूरय-
स्तेनैको निहतो बलिर्बलिशतध्वंसी भुजस्तावकः।
तं वैकुण्ठमवैति को न जगतीं जेतुं त्वकुण्ठो भवा-
नस्त्येवं महदन्तरं तव तथा देवस्य दैत्यद्रुहः ॥ 31

प्रस्तुत पद्य में त्रिविक्रम (तीन पादनिक्षेप तथा तीन पराक्रम) बलि (बलि नामक दैत्य तथा शक्तिशाली) तथा वैकुण्ठ (विष्णु, निश्चित रूप से जड़) पदों में श्लेष है।

वाचकलुप्तोपमा

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर दोनों के गुण, क्रिया, धर्म का वर्णन उपमा अलङ्कार कहलाता है।[32] 'वा' आदि उपमावाचक पद का लोप होने पर वाचकलुप्तोपमा के छः भेद होते हैं।[33]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार दृष्टिगोचर होता है-

प्रेमाणं विनिमील्य मल्लिकलिकाकर्णावतंसे रसं
मुक्त्वा मौक्तिककुण्डले कुरुत भोः शंभोर्गिरः कर्णयोः ।
युष्माकं रतिकान्तकार्मुकलताक्रेंकारकान्ते रुते
सोत्कण्ठं कलक ठकण्ठकुहरोद्भूतेऽपि मा भून्मनः ।। 34

अर्थात् हे रसिको! मल्लिका की कलियो के बने कर्णाभूषणों में प्रेम समाप्त करके, मोतियों के बने कुण्डलों में रुचि छोड़ कर शम्भु कवि की उक्तियों को कानों में लगाओ। अब तुम्हारा मन कामदेव की धनुर्लता (आम्रमंजरी) की क्रैं-क्रैं ध्वनि के समान मनोहर कोकिल कण्ठ से निकली ध्वनि सुनने को उत्कण्ठित नहीं होना चाहिए।

प्रस्तुत पद्य में कामदेव की धनुर्लता (आम्रमंजरी) की क्रैं-क्रैं करना उपमान, मनोहर कोकिल कण्ठ से निकली आवाज उपमेय तथा दोनों से निकली ध्वनि साधारण धर्म है। यहाँ क्रेंकारकान्ते में इव का लोप होने के कारण वाचकलुप्तोपमा प्रतीत होता है।

रूपक

उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप (आरोपित या कल्पित अभेद) है वह रूपक अलङ्कार है।[35]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में रूपक अलङ्कार प्रतीत होता है-

शक्तिं मानसतीव्रतापदहने धत्ते गलत्संयमा
कामाशां प्रकटीकरोति न सतां सर्वत्रपापासनात् ।
प्रेम प्रौढमनारतं वितनुते वृद्धेति शुद्धेति च
प्रख्यातापि महीमनोभव भवत्कीर्तिर्विचित्राः स्त्रियः ।। 36

अर्थात् (विरोध पक्ष)- हे पृथ्वी के (ऊपर उत्पन्न) कामदेव रूपी राजन्! आपकी कीर्त्ति रूपी वधू 'यह बूढ़ी है और पवित्र, सदाचारिणी है' इस रूप में प्रसिद्ध होती हुई भी अपने मनोनिग्रह को तोड़ कर लोगों के हृदय में तीव्र काम की अग्नि को दहकाने की शक्ति रखती है। अपनी सारी लज्जा को छोड़ देने के कारण क्या सज्जनों की भी सम्भोगाभिलाषा को उत्पन्न नहीं करती है? अपितु करती ही है। लोगों की बढ़ी हुई अनुरक्ति को और अधिक बढ़ाती है (ऐसा हो भी क्यों नही?) नारियां विचित्र हुआ करती हैं।

प्रस्तुत पद्य में उपमेय राजा का उपमान कामदेव के साथ तथा उपमेय कीर्ति का उपमान नायिका के साथ अभेद आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

व्यतिरेक

जब उपमान की अपेक्षा उपमेय का आधिक्य (गुण विशेष के द्वारा उत्कर्ष) वर्णित किया जाता है उसे व्यतिरेक अलङ्कार कहते हैं।[37]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में व्यतिरेक अलङ्कार मिलता है-

चक्रे यत्र मदोर्जितार्जुनभुजस्तम्भाहतिं भार्गवो
यत्रासीद्दशकण्ठकण्ठविपिनच्छेदी रघूणां पतिः ।
पार्थेनापि जितः स यत्र गिरिजाकान्तः किरातकृति-
र्गीतः पल्लविताद्भुतैस्तव न कैस्तत्रापि दोर्विक्रमः ।। 38

श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ।। का. प्र., सूत्र ९/११८

31 राजेन्द्र. ६०

32 साधर्म्यमुपमा भेदे । का. प्र., सूत्र १०/१२४

33 वाशब्दः उपमाद्योतक इति वादेरुपमाप्रतिपादकस्य लोपे षट् । वही पृ. ४५२, आचार्य विश्वेश्वर

34 राजेन्द्र. ३

35 तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः । का. प्र., सूत्र १०/१३८

36 राजेन्द्र. ५८

37 उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः । का. प्र., सूत्र १०/१५८

38 राजेन्द्र. ६१

अर्थात् जहाँ परशुराम ने अहङ्कार से उन्मत्त कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन की स्तम्भ के समान कठोर भुजाओं पर आघात किया था। रावण के कण्ठरूपी वन को काटने वाले रघुकुल के स्वामी भगवान राम जहाँ विराजमान थे। जहाँ अर्जुन ने भी किरातवेषधारी शिवजी को पराजित किया था। वहाँ भी तुम्हारे विकसित और अद्भुत पराक्रमों के कारण किन लोगों ने तुम्हारी भुजाओं के बल का गान नहीं किया है? अर्थात् सब ने ही किया है।

प्रस्तुत पद्य में उपमान परशुराम, दशरथ, राम, अर्जुन से उपमेय राजा हर्ष के पुरुषार्थ का आधिक्य दिखाया गया है इस अर्थ की प्रतीति होने से व्यतिरेक अलङ्कार प्रतीत होता है।

विभावना

जब कारण का निषेध होने पर भी उसके कार्यरूप फल का कथन किया जाता है, उसे विभावना अलङ्कार कहते हैं।[39]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में विभावना अलङ्कार मिलता है-

नो चैत्रः सहकारकुड्मलकुलैः क्लृप्तं न तत्कार्मुकं
नामी क्रूरशिलीमुखाः शितमुखा नो कोकिलापञ्चमः।
नैवोद्दामकरः शशी न मकरः केतुस्थितो नो रति-
स्तत्रापि त्वमहो समस्तरमणीमानव्यधो मन्मथः ।।[40]

अर्थात् न तो चैत्रमास है, न ही आम्रकलिकाओं के समूह से बना वह लोकविजयी धनुष है, न ही वे नुकीले क्रूर बाण है, न ही कोयल का पञ्चम स्वर है, न ही उद्दीपक किरणों से युक्त चन्द्रमा है, न ही पताका में मकर विद्यमान है, न ही साथ में रति है, फिर भी (बिना किसी की सहायता के) तुम सभी रमणियों के मान को भङ्ग करने वाले कामदेव हो।

प्रस्तुत पद्य में "चैत्रमास, आम्रकलिकाओं के समूह से बना लोकविजयी धनुष, नुकीले क्रूर बाण, कोयल स्वर, उद्दीपक किरणों से युक्त चन्द्रमा, पताका में मकर तथा रति" रमणियों के मान को भङ्ग करने के लिए कारण हो सकता था। परन्तु उन कारणों का निषेध करने पर भी कार्य का प्रकाशन किया गया है। इसलिए यह विभावना अलङ्कार का उदाहरण है।

विशेषोक्ति

प्रसिद्ध कारणों के मिलने पर भी कार्य का कथन न करना विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।[41]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में विशेषोक्ति अलङ्कार मिलता है-

सोल्लासा अपि सोद्यमा अपि घनोत्कण्ठा अपि क्वापि
नो यान्ति श्यामनिशान्तरेऽपि रमणोपान्तं कुरङ्गीदृशः ।
सद्यस्त्वद्यशसा हि कुञ्जररदच्छेदच्छविच्छादिना
नीतं कान्तपुरंध्रिकुन्तलभरश्यामं विरामं तमः ।। [42]

अर्थात् उल्लसित हुई भी, उद्योग करने वाली होते हुए भी, प्रियमिलन की बड़ी अभिलाषा से भरी हुई भी, काली रात के मध्य में भी, मृगनयनी सुन्दरियां अपने प्रेमियों के पास नहीं जाती हैं। क्योकि हाल में ही हाथी दांत के टुकड़े की कांति को आच्छादित (तिरस्कृत) करने वाले तुम्हारे यश ने सुन्दर रमणियों के बालों के समान काले अन्धकार को दूर कर दिया है।

प्रस्तुत पद्य में मृगनयनी सुन्दरियां का उल्लसित होना, उद्यम होना, उत्कण्ठित होना कारण के होने पर भी प्रियमिलन रूप कार्य का नहीं होने से विशेषोक्ति अलंकार है। परन्तु यहाँ उसका कारण रात्रियों का यश के द्वारा धवल हो जाना कहा हुआ है। अतः यह उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का उदाहरण है।

अर्थान्तरन्यास

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है, उसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार कहते हैं।[43]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार मिलता है-

शेष क्लेशमशेषमुत्सृज भज त्वं कूर्म कर्म स्वकं
स्वैरं खेलत सिन्धुसैकतलताकुञ्जेषु दिक्कुंजराः ।
अप्येतां सकुलाचलां सनगरां साम्भोनिधिं सापगां
सद्वीपां च भुवं बिभर्ति हि भुजः श्रीहर्षपृथ्वीभुजः ।। [44]

---

[39] क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिविभावना । का. प्र., सूत्र १०/१६१

[40] राजेन्द्र. ४१

[41] विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः । का. प्र., सूत्र १०/१६२

[42] राजेन्द्र. २४

[43] सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।। का. प्र., सूत्र १०/१६४

[44] राजेन्द्र. १९

अर्थात् अरे शेष नाग! तुम पृथिवी को धारण करने का अपना सारा कष्ट छोड़ो, हे कच्छपावतार! तुम अपना काम करते रहो। (पृथिवी को उठाने का काम छोड़कर घूमने फिरने का काम करो) अरे दिशाओं के हाथियों! तुम स्वेच्छा से समुद्र के रेत और लताकुञ्जो में खेलो (तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है) क्योंकि कुल पर्वतों समेत, नगरों सहित, सम्पूर्ण सागरों वाली, सारी नदियों और सारे द्वीपों समेत इस भूमि को श्री हर्ष की भुजा धारण कर रही है।

प्रस्तुत पद्य में शेषनाग आदि से अपना-अपना कष्टकर कार्य को छोड़कर निश्चिन्त रहने को कहा है जिसका कारण राजा हर्ष द्वारा पृथिवी का सारा भार उठा लेना है। यहाँ साधर्म्य के द्वारा विशेष से सामान्य के समर्थन का अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का उदाहरण है।

काव्यलिङ्ग

वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप में कथन करना काव्यलिङ्ग अलङ्कार कहलाता है।[45]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार मिलता है-

प्रालेयैः स्नपयन्ति कल्पलतिकाः सेकाननेकानथ
श्रीखण्डाम्बुगलज्जलैरविरलैस्तन्वन्ति संतानके ।
सान्द्रैश्चन्द्रमणिद्रवैरपि विभो मन्दारवल्लीमलं
सिञ्चन्त्यद्य भवत्प्रतापदहनत्रासेन नाकाङ्गनाः ।। [46]

अर्थात् हे राजन्! आपकी प्रताप रूपी अग्नि के डर से आज स्वर्ग की सुन्दरियां हिमकणों से कल्पलताओं का सिञ्चन कर रही हैं और चन्दनरस मिश्रित घने जलों के द्वारा लतासमूहों के ऊपर अनेक छिड़कावों को कर रही है तथा चन्द्रकान्त मणियों के गाढ़े पानियों से मन्दारलता को खूब सींच रही है।

प्रस्तुत पद्य में राजा की प्रचण्ड प्रतापाग्नि, सेंचन क्रिया में हेतु है इसलिए काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

समुच्चय

प्रस्तुत कार्य के एक साधक हेतु के होने पर भी जहाँ अन्य साधन भी हो जाते हैं वह समुच्चय अलङ्कार कहलाता है।[47]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में समुच्चय अलङ्कार मिलता है-

शान्त्यै दर्पवतां जयाय जगतां संपत्तये याचतां
सम्मानाय सतां हिताय महतां तापाय पृथ्वीभृताम् ।
सोल्लासेन सकौतुकेन शमितध्यानेन दूरीकृत-
स्वाध्यायेन समाप्तसर्वतपसा त्वं वेधसा निर्मितः ।। [48]

अर्थात् प्रसन्नता से भरे हुए, कौतूहल पूर्ण, ध्यान को छोडने वाले, वेदाध्ययनादि के स्वाध्याय को छोडे हुए, सभी प्रकार की तपस्या को खत्म करने वाले ब्रह्मा ने अभिमानियों (के अभिमान) की शान्ति के लिए, सारे संसार को जीतने के लिए, याचको को सम्पत्ति देने के लिए, सज्जनों के आदर के लिए, पूजनीय महापुरुषों के भले के लिए और पृथिवी के स्वामी राजाओं को सन्ताप देने के लिए आप को बनाया है।

प्रस्तुत पद्य में एक राजा के साथ अनेक उत्तम पदार्थों का योग होता है इसलिए सत् पदार्थ के योग में समुच्चय अलङ्कार है।

प्रतीपालङ्कार

उपमान पर आक्षेप अर्थात् उसकी व्यर्थता का प्रतिपादन करना अथवा उस उपमान का तिरस्कार करने के लिए उसकी उपमेयरूप में कल्पना करना प्रतीप अलङ्कार कहलाता है।[49]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में प्रतीप अलङ्कार मिलता है-

विलोकनकथापि मे न नलकूबरे न स्मरे
किमन्यदमृतद्युतेरपि न दर्शनं प्रार्थये ।
अयं नयनगोचरं व्रजति चेद् दृशामुत्सवः
समग्ररमणीमनोमधुपमाधवः क्ष्माधवः ।। [50]

अर्थात् नयनों को आनन्दित करने वाला, सभी सुन्दरियों के मनोरूपी भौंरों के लिए चैत्र रूप यह पृथ्वीपति यदि आंखो

---

[45] काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता । का. प्र., सूत्र १०/१७३

[46] राजेन्द्र. ६३

[47] तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत् । का. प्र., सूत्र १०/१७७

[48] राजेन्द्र. ७

[49] आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता ।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबन्धनम् ।। का. प्र., सूत्र १०/२००

[50] राजेन्द्र. ६९

के सामने आ जाता है तो मेरे लिए न तो कुबेर के पुत्र सुन्दर नलकूबर को देखने की बात है, न कामदेव को। और तो क्या कहूं, मुझे तो चन्द्रमा के दर्शन की भी चाह नहीं रही है।
प्रस्तुत पद्य में पृथ्वीपति राजा के होने पर नलकबूतर, कामदेव और चन्द्रमा इन प्रसिद्ध उपमानों की व्यर्थता सूचित की गयी है इसलिए यह प्रथम प्रकार के प्रतीप अलङ्कार का उदाहरण है।

तद्गुण

जब न्यून गुणवाली प्रस्तुत वस्तु अत्यन्त उत्कृष्ट गुणवाली अप्रस्तुत वस्तु के सम्बन्ध से अपने स्वरूप या गुण को छोड़कर उस अप्रस्तुत वस्तु के रूप को प्राप्त हो जाती है वह तद्गुण अलङ्कार कहलाता है।[51]

राजेन्द्रकर्णपूर के इस श्लोक में तद्गुण अलङ्कार मिलता है-

कैलासन्ति महीभृतः फणभृतः शेषन्ति पाथोधयः
क्षीरोदन्ति सुरद्विपन्ति करिणो हंसन्ति पुंस्कोकिलाः । [52]

अर्थात् साधारण पर्वत कैलास प्रतीत हो रहे हैं, सर्प शेषनाग लग रहे हैं, समुद्र श्वेत दुग्धसागर प्रतीत हो रहे हैं, हाथी ऐरावत दिखाई दे रहे है और पुंस्कोकिल हंस प्रतीत हो रहे हैं।
प्रस्तुत पद्य में साधारण पर्वत का कैलास, सर्प का शेषनाग आदि में अपने गुण को छोड़कर दूसरी वस्तुओं के गुणों को ग्रहण करना प्रतीत होता है इसलिए तद्गुण अलङ्कार है।

सङ्कर

अपने स्वरूपमात्र में जिनकी विश्रान्ति न हो (अर्थात् जो परस्पर निरपेक्ष स्वतन्त्र रूप से अलङ्कार न बनते हों) उनका अङ्गाङ्गि भाव होने पर सङ्कर अलङ्कार कहलाता है।[53]

राजेन्द्रकर्णपूर के इस श्लोक में सङ्कर अलङ्कार मिलता है-

व्याप्तव्योमलते मृगाङ्कधवले निर्धौतदिङ्मण्डले
देव त्वद्यशसि प्रशान्ततमसि प्रौढे जगत्प्रेयसि ।
कैलासन्ति महीभृतः फणभृतः शेषन्ति पाथोधयः
क्षीरोदन्ति सुरद्विपन्ति करिणो हंसन्ति पुंस्कोकिलाः ।। [54]

अर्थात् हे दिव्यगुणों वाले राजन्! अन्धकार को समाप्त करता हुआ, दिशाओं के मण्डलो को धो डालता हुआ, संसार को अत्यधिक प्रिय लगने वाला, चन्द्रमा के समान शुभ्र तुम्हारा यश सुन्दर आकाश में फैल गया है और (उसके प्रकाश में) साधारण पर्वत कैलाश प्रतीत हो रहे हैं, सर्प शेषनाग लग रहे हैं, समुद्र श्वेत दुग्धमागर प्रतीत हो रहे हैं, हाथी ऐरावत दिखाई दे रहे है और पुंस्कोकिल हंस प्रतीत हो रहे हैं।
प्रस्तुत पद्य के 'मृगाङ्कधवले त्वद्यशसि' पद में इव का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा तथा साधारण पर्वतों का कैलाशवत् प्रतीति आदि का हेतु राजा के यश का विस्तार है इसलिए काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। यहाँ वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार अङ्गी तथा काव्यलिङ्ग अलङ्कार अङ्ग रूप में है। इसलिए यह अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर अलङ्कार का उदाहरण है।

उपसंहार

राजेन्द्रकर्णपूर में प्रयुक्त अलङ्कारों का सम्यक रूप से विवेचन किया गया है। मुख्य रूप से अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, व्यतिरेक, विभावना, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों का चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त अलङ्कारों की छटा अत्यन्त मनोहारिणी है।

सन्दर्भ

1. काव्यमाला, (प्रथम गुच्छक) दुर्गा प्रसाद, मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, १९२९
2. राजेन्द्रकर्णपूर, (.व्या.हि) (डॉ.) वेदकुमारी, वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९७३
3. मम्मट , काव्यप्रकाश (व्या.) (आचार्य) विश्वेश्वर, वाराणसी: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, १९६०
4. मम्मट, काव्यप्रकाश (व्या.) श्रीनिवास शास्त्री, मेरठ: साहित्य भण्डार, १९६०
5. राजशेखर, काव्यमीमांसा (व्या.) (पं.) मधुसूदन मिश्र, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, १९३४
6. रुद्रट, काव्यालङ्कार (डॉ.) सत्यदेव चौधरी, दिल्ली: वासुदेव प्रकाशन, १९६५
7. वामन, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (व्या.) (डॉ.) बेचन झा, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वि. सं. २०३३

[51] स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत् ।
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः ।। का. प्र., सूत्र १०/२०३
[52] राजेन्द्र. ४
[53] अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं तु सङ्करः । का. प्र., सूत्र १०/२०७
[54] राजेन्द्र. ४

8. वामन, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (व्या.) (आचार्य) विश्वेश्वर, दिल्ली: आत्माराम एण्ड सन्स, १९५४
9. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण (व्या.) (डॉ.) निरूपण विद्यालङ्कार, मेरठ: साहित्य भण्डार, १९७४
10. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण(.व्या) शालिग्राम शास्त्री, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, अष्टम पुनर्मुद्रण, २०१६
11. गैरोला, वाचस्पति. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, १९६०
12. गोयल, प्रीतिप्रभा. संस्कृत साहित्य का इतिहास, जोधपुर: राजस्थान ग्रन्थगार, १९९९
13. डे, सुशील. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पटना: बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७३
14. द्विवेदी, कपिलदेव. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, इलाहाबाद: रामनारायण लाल विजयकुमार, २०००
15. पोद्दार, सेठ कन्हैयालाल. संस्कृत साहित्य का इतिहास, काशी: नागरीप्रचारिणी सभा, १९५५
16. शर्मा, उमाशङ्कर. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी: चौखम्भा भारती अकादमी, पुनर्मुद्रित २०१६A